जैनदर्शन में प्रयुक्त कतिपय दार्शनिक शब्द

• डॉ. (श्रीमती) अलका प्रचण्डिया 'दीति'

प्रत्येक तत्वदर्शी ने आचार रूप धर्म का उपदेश देने के साथ वस्तु स्वभाव रूप धर्म का भी उपदेश दिया है जिसे दर्शन कहा गया है। प्रत्येक धर्म का अपना एक दर्शन होता है। दर्शन में आत्मा क्या है? परलोक क्या है? विश्व क्या है? ईश्वर क्या है? आदि-आदि मूल तत्वों पर विचार किया जाता हैं। आध्यात्मिक तथा भौतिक जगत को देखने की दृष्टि अलग है। जैन दर्शन को प्रतिपादित करने वाले अनेक शब्द हिन्दी जैन साहित्य में व्यवहृत हैं जिनका शब्दार्थ लौकिक हिन्दी काव्य से भिन्न है। दार्शनिक शब्द का अर्थ है - दर्शन विषयक शब्द समूह। दर्शन विषय का प्रतिपादन करने वाले शब्द कुल वस्तुतः दार्शनिक शब्द कहलाते हैं। इन शब्दों में एक विशेष अर्थ-अभिप्राय सन्निहित रहता है। फलस्वरूप इन्हें पारिभाषिक रूप में सम्मिलित किया जाता है। पारिभाषिक शब्द उन्हें कहते हैं जो किसी विशिष्ट अर्थ को अपने में समेटे रहते हैं। प्रस्तुत आलेख में जैनदर्शन से संबंधित कतिपय दार्शनिक शब्दों का अर्थ-अभिप्राय प्रस्तुत करना हमें अभीप्सित है।

अजीव - न जीवः इति अजीवः अर्थात चैतन्य शक्ति का अभाव है। जैनदर्शन में षट् द्रव्यों का उल्लेख मिलता है-यथा-जीव, अजीव धर्म, अधर्म, आकाश, काल। अजीव द्रव्य जड़ रूप है। उसमें ज्ञाता द्रष्टा स्वरूप जीव द्रव्य की योग्यता नहीं है। अजीव द्रव्य के अंतर्गत चार प्रकार का वर्णन हुआ है - पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश। इसमें पुदगल द्रव्य मूर्तीक है क्योंकि उसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श पाया जाता है क्योंकि इसमें रूपादि गुण नहीं होते। अज़ीव द्रव्य का कथन सभी आचार्यों ने भेदप्रभेद सहित किया है। सभी ने उसे जीव से विपरीत लक्षण वाला तत्व स्वीकार किया है।

अणुव्रत - 'अणु' का अर्थ सूक्ष्म है तथा व्रत का अर्थ धारण करना है। इस प्रकार अणुव्रत शब्द की संधि करने पर इस शब्द की निष्पत्ति हुई - अणु नाम व्रत ही अणुव्रत है। निश्चय सम्यक् दर्शन सहित चरित्र गुण की आंशिक शुद्धि होने से उत्पन्न आत्मा की शुद्धि विशेष को देशचारित कहते हैं। श्रावक दशा में पांच पापों का स्थूल रूप एक देश त्याग होता कहै, उसे अणुव्रत कहा जाता है। अणुव्रत पाँच प्रकार से कहे गए हैं - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। यह अणुव्रत सम्यक् दर्शन के बिना नहीं होते हैं, ऐसा जैनाचार्यों ने कहा है।

अतिचार - चरते इति चारः अत्यंत निकृष्टतम चारः अतिचारः। 'चर' धातु में अति उपसर्ग पूर्वक इस शब्द की निष्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है सम्यक् आचार से अतिरिक्त आचरण करना अथवा विषयों का वर्तन करना। राग के उदय से जीवात्मा सम्यक् श्रद्धान से विचलित हो जाता है। इस प्रकार इंद्रियों की असावधानी से शील व्रतों में कुछ अंश भंग हो जाने को अर्थात् कुछ दूषण लग जाने को अतिचार कहते हैं। जिनवाणी में दो अतिचार के भेद कहे हैं - (१) देशत्याग - मन, वचन, काय कृतकारित, अनुमोदनादि नौ भेदों से किसी एक के द्वारा सम्यक् दर्शानादि में दोष उत्पन्न होना देशातिचार है। (२) सर्वत्याग - सर्व प्रकार से अतिचार होना सर्व त्यागातिचार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतचतुष्टय - न अंतः यस्य असौ अनंत। चतुः स्तः हल् संधि होकर विसर्गों का 'व' 'स्त' का तः होकर चतुष्टय शब्द निष्पन्न हुआ। अनंत का पर्याय आत्मा है तथा चतुष्टय का अर्थ चार तत्वों आदि का समूह। इस प्रकार 'आत्मानः चतुष्टयं अनंत चतुष्टय' अर्थात आत्मा के चार गुण। जिनवाणी में आत्मा का स्वभाव अनंत चतुष्टय बताया गया है। अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य, अनंत सुख के समन्वित रूप को अनंत चतुष्टय कहते हैं। जीवात्मा निजस्वभाव द्वारा चार घातिया - दर्शनावरणी, ज्ञानावरणी, मोहनीय, अंतराय-नामक-कर्मों को क्षय कर अनंत चतुष्टय गुण को प्राप्त कर अनंतानंद की अनुभूति करता है। अनंत चतुष्टय जैन दर्शन में इसी अभिप्राय में प्रयुक्त हुआ है।

अनन्तानुबंधी - अनंतस्य अनुबंधः अनंतानुबंधः। अनंतकाल से अनुबंधित होने वाले कषायों को अनंतानुबंधी कहते हैं। जिनके उदय होने पर आत्मा को सम्यक्तव न हो सके, स्वरूपाचारण चरित्र न हो सके। वे अनंतानुबंधीकषाय है। जीव की अनंतानुबंधी प्रकृति के उदय होने से अभिप्राय की विपरीतता के कारण इसे सम्यक्तव घाती पर तथा पर - पदार्थों में राग द्वेष उत्पन्न करने के कारण चारित्रघाती कहा है। यह अनंतानुबंधी कषाय चार प्रकार से कहा गया है यथा-क्रोध, मान, माया, लोभ,।

अनुभागबंध - 'अनु' उपसर्ग 'भज' धातु से अनुभाग शब्द की सिद्धि होती है अर्थात् अनुपश्चात भज्यते इति अनुभाग । अनुभागस्य बंधः अनुभागबंधः। जैन दर्शन के अनुसार कर्मों में तीव्र मंद फलदान शक्ति अनुभाग बंध कहलाती है। अनुभागबंध-बंध तत्व के चार प्रकारों - प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभाग बंध तथा प्रदेश बंध में से एक बंध विशेष है। कषाय प्रवृत्तियों द्वारा प्रकृतियों में अनुभाग बंध होता है। अनुभाग बंध के अनुसार ही कर्म के उदय काल में उनकी प्रवृत्तियों का फल उत्पन्न होता है।

अनर्थदण्ड - अनर्थ व्यर्थ दंडः अनर्थदंड। अनर्थ दंड का अर्थ व्यर्थ में किसी को दंड देना है। जिनवाणी में कहा है कि निष्प्रयोजन किया हुआ कार्य वस्तुतः अनर्थदंड कहलाता है। इस शब्द का व्यवहार जैन दर्शन में सर्वत्र हुआ है। इसके त्याग को अनर्थदंड व्रत कहा गया है।

अनायतन - न आयतनं अनायतनम्। यह यौगिक शब्द है अन+आयतन। अर्थात धर्म का स्थान न होना। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और इन तीनों के सेवक इस तरह अधर्म के स्थानक षट् प्रकार से कहे गए हैं। इनकी संगति से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। फलस्वरूप वीतराग भाव प्रकट नहीं हो पाता। परिणाम स्वरूप प्राणी को परम इष्ट मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो पाती। इनसे अतत्व श्रद्धान परिपुष्ट होकर मोह-भाव का प्रयोजन प्रकट होता है। अनायतन शब्द का प्रयोग जिनवाणी में इसी अभिप्राय को लेकर हुआ है।

अनुप्रेक्षा - अनु+प्र+ईक्ष धातु में टाप लगाने से अनुप्रेक्षा शब्द बना जिसका अर्थ चारों ओर से देखना है। इस प्रकार अनुप्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ देखना, सोचना तथा चिंतन करना है। वस्तुतः अनुप्रेक्षा भावना का ही पर्यायवाची है। आत्मा में वैराग्य के लिये जिनका बारंबार चिन्तवन किया जाता है इसे भावना कहते हैं। इस प्रकार के चिन्तवन को बारह कोटियों में विभाजित किया गया है-। (१) **अनित्यानुप्रेक्षा** - पर्याय की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु क्षणिक है (२) **अशरणोनुप्रेक्षा** - संसार में कोई भी शरण नहीं है (३) **संसारानुप्रेक्षा** - संसार का स्वरूप वर्णन, अपने-तेरे से उत्पन्न दुःख वर्णन (४) **एकत्वानुप्रेक्षा** - जीव के अकेलेपन का कथन (५) **अन्यत्वानुप्रेक्षा** - जीव से शरीरादि भिन्न है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) अशुचित्वानुप्रेक्षा - शरीर की अशुचिता का कथन **(७) आस्रवानुप्रेक्षा** - योग ही आस्रव है। तीव्र-मंद, कषाय अशुभ शुभ आस्रव के कारण हैं **(८)संवरानुप्रेक्षा** - संवर के हेतु-गुप्ति, समिति, धर्म आदि का स्वरूप वर्णन **(९) निर्जरानुप्रेक्षा** - निर्जरा का स्वरूप उसके कारणों का वर्णन **(१०)लोकानुप्रेक्षा** - लोक के स्वल्पादि का वर्णन **(११)बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा** - मनुष्य जन्म प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करने के लिए रत्नत्रय में आदर भाव रखने की भावना **(१२) धर्मानुप्रेक्षा-** सर्वज्ञ देव का स्वरूप ज्ञान, सर्वज्ञता प्राप्त करने के साधनों को चिंतवन।

अनुयोग - 'अनु' उपसर्ग को 'युज' धातु से धत्र प्रत्यय करने पर अनुयोग शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ परिच्छेद अथवा प्रकरण है। जिनवाणी में वर्णित आगम जिसमें सर्वज्ञ प्रणीत सूक्ष्म-दूरवर्ती-भूत व भावी काल के पदार्थों का निश्चयात्मक वर्णन किया गया है - ऐसे आगम के चार भेदों को अनुयोग कहते हैं जिनके क्रमशः चक्रवर्ती का चरित्र निरूपण, जीव कर्मों, त्रिलोक आदि सप्त तत्वों 'मुनिधर्म' आदि का निरुपण किया गया है। जैनधर्म में अनुयोग चार प्रकार से कहे गये है। **(१) प्रथमानुयोग** - इसमें तीर्थकर, चक्रवर्ती आदि महान पुरुषों का चरित्र वर्णन हैं। **(२) करणानुयोग** - यहाँ जीव के गुण-स्थान, उसके मार्गणादि रूप, कर्मों तथा त्रिलोकादि का निरूपण हुआ है। **(३) चरणानुयोग** - मुनि धर्म तथा गृहस्थ धर्म का वर्णन हुआ है। **(४) द्रव्यानुयोग** - षट्द्रव्य, सप्ततत्व, स्व-पर भेद विज्ञानादि का निरूपण हुआ है।

मंगलकलश, ३९४
सर्वोदयनगर, आगरा रोड़,
अलीगढ़

* * * * *

चिंतन कण

- प्रेम में वह शक्ति है जो तीर, तलवार,एटमबम्ल में भी नहीं हो सकती।
- प्रेम रूपी मंत्र विश्व मैत्री के संदेश का सामर्थ्य रखता हैं।
- जिस प्राणी को विश्व की बड़ी-बड़ी शक्ति परास्त नहीं कर सके, उसे स्नेह शक्ति ने नत मस्तक कर दिया।
- प्रेम में वह शक्ति है जो विष को भी अमृत में परिणत कर दें।

• *परम विदुषी महासती श्री चम्पा कुवंरजी म.झा.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org